दिनांक - 07-02-2024

अनिल कुमार, इतिहास विभाग, आर०बी० जी० आर० कॉलेज, महाराजगंज

CBCS, SEMESTER-I, PAPER-I HISTORY MJC & MIC

भारतीय अंक प्रणाली और गणित (शेष भाग)

classmate
Date
Page

~~को गणित विद्या का ज्ञान भली भली-भाँति था।~~ अपने गणित ज्ञान से उन्होंने संसार को अनेक नये सिद्धांतों से अवगत कराया। कुछ पाश्चात्य विद्वानों की धारणा है कि भारतीयों ने यूनान तथा अरब के लोगों के सम्पर्क से गणित का ज्ञान प्राप्त किया किन्तु अनेक अन्वेषणों ने इस बात को सिद्ध कर दिया है कि भारतीय विद्वान गणित शास्त्र में पूर्ण कुशल थे तथा गणित के क्षेत्र में उनके योगदान के लिए सम्पूर्ण विश्व उनका ऋणी रहेगा।

गणित की उत्पत्ति एवं विकास — भारतीय गणित की उत्पत्ति का प्रमाण प्रागैतिहासिक काल से ही मिलने लगता है। मोहन जोदड़ो से प्राप्त शिलालेखों तथा मुहरों से पता चलता है कि भारतवासी संख्याओं को अंको तथा कभी-कभी लकीरों द्वारा लिखते थे। यद्यपि उनके द्वारा लिखित यह अंक आधुनिक अंकों से भिन्न थे। वैदिक काल में यज्ञों के विधि-विधान में हमें गणित का परिचय मिलता है। सूत्र साहित्य के 'शुल्वसूत्र' से ही रेखागणित की उत्पत्ति मानी गई है। शुल्वसूत्र में वेदों की विभिन्न आकृतियों जैसे — चतुर्भुज, समकोण, वर्ग आदि के नियमों का वर्णन है। शुल्वसूत्र में यज्ञों से संबंधित जो विधि-विधान बनाये गए वही नियम आधुनिक गणित के आधार माने जाते हैं। प्राचीन भारत के गणितज्ञों में गौतम, बौधायन, आपस्तम्भ कात्यायन, मैत्रायण, वाराह, वशिष्ठ आदि के नाम उल्लेखनीय है। बौधायन ने ही सर्वप्रथम अपने शुल्वसूत्रों में विभिन्न वैदिक यज्ञों के लिए आवश्यक विविध वेदी सम्बन्धी मान निर्धारित किये इसलिए उन्हें रेखागणित

सम्बन्धी सिद्धांतों के प्रतिपादन एवं विकास का प्रधान श्रेय जाता है। प्राचीन भारतीय रेखागणित के अतिरिक्त बीजगणित तथा अंकगणित से भी परिचित थे। भास्कराचार्य ने 'लीलावती' तथा आर्यभट्ट ने आर्यभट्टीयम में अंकगणित रेखागणित तथा बीजगणित के सिद्धांत प्रतिपादित किये। आर्यभट्ट ने अंक संख्याओं का उल्लेख करते हुये दशमिक पद्धति का भी वर्णन किया। भास्कराचार्य ने 'लीलावती' में यह प्रमाणित किया कि जब शून्य से किसी अंक का भाग दिया जाता है तो उसका फल अनन्त होता है। आर्यभट्ट ने वृत के क्षेत्रफल का सिद्धांत भी दिया जिसमें उन्होंने कहा कि यह परिधि तथा व्यास के आधे का गुणनफल ½ परिधि × ½ व्यास होता है। इसके अतिरिक्त ब्रह्मगुप्त के 'ब्रह्मस्फुट सिद्धांत' वृतीय चतुर्भुज का क्षेत्रफल, सूची स्तंभ, छिन्नक (Frustum) सम्बन्धी सिद्धांतों के लिए प्रसिद्ध है। भास्कराचार्य ने बीजगणित में धनर्ण संख्याओं के योग, करणी संख्याओं के योग, भाजक तथा भाज्य की प्रक्रिया वर्ग प्रकृति अनेक समीकरणों जैसे विषयों पर नियम लिखे।

निःसंदेह भारतीयों ने गणित के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया और उनके योगदानों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्राचीन भारतीय गणित से पूर्णतः परिचित थे। भारतीय अंकपद्धति को अरबों ने अपनाया और वहीं से यह पश्चिमी देशों में प्रचलित हुई। अंग्रेजी में भारतीय अंकमाला को अरबी अंक (अरेबिक न्यूमरल्स) कहते हैं। किन्तु अरब के लोग इसे भारत से अपनाये जाने के परिणामस्वरूप हिन्दसा कहते हैं। अर्थात पश्चिम में अंक माला का प्रचार होने के काफी पहले ही भारत में इसका प्रयोग हो चुका था। यहाँ तक कि अशोक के अभिलेखों में भी इसका प्रयोग किया गया था।

शून्य का अविष्कार — सामान्यतः शून्य का अर्थ है कुछ नहीं लेकिन भारतीय गणित में "शून्य" का महत्वपूर्ण स्थान है। गणित में शून्य वह अनंत अंक है जो कभी-भी विभाजित नहीं होता। शून्य का अविष्कार भारतीयों ने ई० पू० दूसरी सदी में किया। अरब देशों ने शून्य का प्रयोग 873 ई० में किया। सम्भवतः अरबों ने इसे भारत से ही सीखा था और तत्पश्चात यूरोप में फैलाया। आर्यभट्ट द्वारा किये गये गणित के अन्य अविष्कार भी अरब एवं यूरोप में भारत से ही पहुँचे। शून्य को किसी राशि में जोड़ने अथवा इसमें कोई राशि जोड़ने या फिर किसी राशि में से घटाने से राशि चिन्ह में कोई परिवर्तन नहीं होता। शून्य को किसी राशि से गुणा करने पर गुणनफल शून्य रहेगा, किन्तु राशि को शून्य से भाग देने पर फल स्वहर अथवा स्वच्छेद (अनन्त) होता है। इस प्रकार शून्य का कितना भी विभाजन किया जाये, वह अनन्त ही रहेगा। आर्यभट्ट ने भी अंक संख्याओं का उल्लेख करते हुये उसमें गणना की दाशमिक पद्धति का प्रयोग किया है। यह प्रथम नौ संख्याओं के स्थानीय मान तथा शून्य के प्रयोग पर आधारित था। इस प्रकार स्पष्ट है कि 'शून्य का दाशमिक पद्धति' जो समस्त विश्व में स्वीकृत है, भारतीयों की गणित क्षेत्र में अविस्मरणीय उपलब्धि है।

इस प्रकार निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय अंक पद्धति का वैदिक काल, ब्राह्मण साहित्य काल सूत्र काल एवं जैन एवं बौद्ध साहित्यों में प्राचीन काल से ही अपने विकास की गाथा का स्वर्णिम इतिहास लिखता है। रेखागणित बीजगणित, अंक गणित एवं समीकरणों जैसे विषयों पर जिस नियम का प्रतिपादन किया गया वह प्राचीन भारतीय इतिहास का अमूल्य धरोहर है।

दिनांक 07-02-2024
अनिल कुमार, इतिहास विभाग, आर० बी० जी० आर० कॉलेज, महराजगंज
TDC PART III HISTORY (HON) PAPER V

पानीपत का प्रथम युद्ध- कारण एवं महत्व

भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना एक युगान्तकारी घटना के रूप में देखी जाती है। मध्यकालीन भारत के इतिहास का एक चरण तुर्क अफगान शासन काल था तो दूसरा चरण मुगल शासन काल। मुगल साम्राज्य का संस्थापक जहिरुद्दीन बाबर मध्यकालीन भारतीय शासकों में विशिष्ट स्थान रखता है। बाबर ने सर्वप्रथम भारत में अपने राज्य की स्थापना के लिए पानीपत का प्रथम युद्ध 1526 ई० में लड़ा।

चौदहवीं शताब्दी के अंत में तैमूर के आक्रमणों के साथ ही उत्तरी भारत में संगठित केन्द्रीय सत्ता का अन्त हुआ और अनेक क्षेत्रिय राज्यों की उत्पति हुई। यही स्थिति बाबर के आक्रमण तक बनी रही। उत्तरी भारत के ये क्षेत्रिय राज्य आपसी वैमनस्यता और प्रतिस्पर्धा के शिकार रहे और किसी प्रकार की एकता या संगठन का प्रयास सम्भव नहीं हो सका। अतः राजनैतिक अनेकता और किसी संगठित केन्द्रीय सत्ता का आभाव इस काल के राजनैतिक जीवन की मुख्य विशेषता थी।

ऐसे अनेक भारतीय राज्यों में से सबसे महत्वपूर्ण दिल्ली सल्तनत का राज्य था क्योंकि दिल्ली, पूर्व काल में उत्तर भारतीय साम्राज्य की राजधानी रही थी। बाबर के आक्रमण के समय दिल्ली सल्तनत पंजाब से लेकर बिहार के क्षेत्रों तक फैली हुई थी और इसपर लोदी वंश का शासन था। समकालीन शासक इब्राहिम लोदी दिल्ली सल्तनत का ~~उस समय~~ सुल्तान था जिसे पानिपत के युद्ध में पराजित कर बाबर ने मुगल साम्राज्य की स्थापना की।

पानिपत का युद्ध कोई एकाएक घटी घटना नहीं थी बल्कि इस युद्ध के कुछ मुलभूत कारण कारण भी थे जैसे बाबर आरंभ से ही महत्वाकांक्षी था। एक बड़े साम्राज्य की स्थापना की लालसा उसे प्रारंभ से थी और भारत विजय उसकी इस महत्वाकांक्षा की परिणाम थी। मध्य-एशिया की राजनीतिक अस्थिरता एवं उत्तर पश्चिम की ओर भी असफलता ने उसे विश्वास दिला दिया था कि यदि उसे साम्राज्य स्थापित

करना है तो ~~इस~~ दक्षिण पूर्व अर्थात भारत की ओर बढ़ना होगा। भारत की अकूत सम्पत्ति बाबर की लालसा को बढ़ावा देने वाली थी। इन सबके अतिरिक्त भारत की दुर्बल राजनीति ने उसको भारत पर आक्रमण करने की प्रेरणा और अवसर भी प्रदान किया। पंजाब के सुबेदार दौलत खाँ लोदी और इब्राहीम लोदी के चाचा आलम खाँ लोदी ने बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए भी आमन्त्रण दिया। सम्भवतया बाबर के पंजाब में आ जाने के पश्चात् राणा संग्राम सिंह ने भी इब्राहीम लोदी के विरुद्ध बाबर को सहायता देने का आश्वासन दिया।

उपरोक्त कारणों से बाबर को काफी बल मिला और उसने पहले पंजाब में प्रवेश करके भारतीय स्थिति को समझने का प्रयत्न किया। इसी कारण भारत पर उसने चार आक्रमण पहले किये और तब पाँचवे आक्रमण में उसने दिल्ली को जीतने का प्रयत्न किया जिसका परिणाम पानीपत का प्रथम युद्ध था।

नवम्बर 1525 में बाबर भारत को जीतने के उद्देश्य से काबुल से चला। पंजाब के गवर्नर दौलत खाँ को शीघ्र ही आत्मसमर्पण करना पड़ा। उसे बन्दी बनाकर भेरा नगर भेज दिया गया परन्तु मार्ग में उसकी मृत्यु हो गई। आलम खाँ भी शीघ्र बाबर की शरण में चला गया। बाबर दिल्ली की ओर बढ़ा। इब्राहीम लोदी उसका मुकाबला करने के लिए पंजाब की ओर बढ़ा। दोनों की सेनायें पानीपत के मैदान में एक दूसरे के सम्मुख पहुँच गई। एक सप्ताह तक दोनों पक्षों की सेनायें एक दूसरे के सामने पड़ी रही। उसके बाद छुट पुट युद्ध भी हुये। परन्तु वास्तविक युद्ध का आरंभ 21 अप्रैल 1526 ई० के प्रातः काल में हुआ और दोपहर तक उसका निर्णय हो गया। युद्ध में बाबर की विजय हुई, इब्राहीम लोदी मारा गया और अफगान सेना नष्ट हो गई। इस प्रकार मुगल सेना के अध्यीन, पानीपत के युद्ध में प्राप्त विजयश्री के उपरांत आगरा और दिल्ली आ गये।

बाबर का तोपखाना, उसकी युद्ध नीति मुख्यतया 'तुलगमा युद्ध नीति' का प्रयोग और उसकी सेनापति की योग्यता उसके विजय के मुख्य कारण ब
धीरे-धीरे लोदी साम्राज्य के के सभी भागों पर बाबर द्वारा अधिकार कर लिया गया। उ
इस युद्ध की विजय से भारत में मुगल वंश की नींव डाल दी
जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर ने 27 अप्रैल 1526 को दिल्ली की मस्जिद में खुतबा पढ़ा।

डा० ईश्वरी प्रसाद के अनुसार "पानीपत के युद्ध ने दिल्ली के साम्राज्य को बाबर के हाथों में सौंप दिया। लोदी वंश की शक्ति चूर चूर हो गई और भारत वर्ष की सर्वोच्च सत्ता चुगताई तुर्कों के हाथ में चली गई।"

बाबर के पानीपत के पहले युद्ध की तुलना के पलासी के युद्ध से की जाती है पानीपत की विजय से भारत में मुगलों के राज्य की स्थापना हुई और पलासी की विजय से अंग्रेजों ने अपना आधिपत्य स्थापित किया। इस विजय के पश्चात और भी सैनिक सफलताएं बाबर और क्लाईव को मिलीं जैसे कि खानवा और बक्सर के युद्ध। जिस प्रकार मुगल साम्राज्य खानवा के युद्ध के बाद दृढ़ बना उसी प्रकार बक्सर के युद्ध के बाद अंग्रेजी साम्राज्य की नींव दृढ़ हुई।" इस प्रकार पानीपत के युद्ध ने भारत के भाग्य का तो नहीं परन्तु लोदी वंश के भाग्य का निर्णय अवश्य कर दि
इस प्रकार पानीपत की लड़ाई का महत्व इतिहास कारों द्वारा अलग-अलग ढंग से आँका गया है। बाबर के लिए यह एक महत्वपूर्ण सफलता थी जिसने लाहौर से लेकर दिल्ली एवं आगरा का क्षेत्र उसकी सत्ता के अधीन कर दिया और उ
भारत में साम्राज्य विस्तार की संभावना उत्पन्न कर
बाबर के जीवन का एक नया चरण आरंभ हुआ जब उस राजनैतिक गतिविधियों का केन्द्र मध्यएशिया से हटकर उत्तरी भारत में स्थापित हुआ। इसके अतिरिक्त पानीपत की विजय ने लोदी शासकों के खजाने पर बाबर का अधि स्थापित किया, जिससे उसकी आर्थिक कठिनाइयां दूर हु और जो अन्य युद्धों में उसके लिए सहायक सिद्ध हु

इन सबके अतिरिक्त इस सफलता ने बाबर को भारतीय शासकों की रणपद्धति की कमजोरियों से परिचित करवाया और उसके आत्म विश्वास को बढ़ाया।

अफगानों के दृष्टीकोण से पानीपत की हार विनाशकारी सिद्ध हुई। दिल्ली और आगरा उनके हाथ से निकल गये। उत्तरी भारत में उनकी सत्ता का मुख्य केन्द्र उनके हाथ से निकल गया परन्तु पश्चिम भारत में गुजरात और पूर्वी भारत में बिहार में उनकी शक्ति अभी भी बनी हुई थी। अतः भारत की राजनीति से अफगानों का प्रभाव समाप्त नहीं हुआ था और वस्तुतः पानीपत की लड़ाई मुगलों और अफगानों के बीच सत्ता प्राप्ति के लिए संघर्ष का केवल आरंभ थी। भारतीय इतिहास के दृष्टिकोण से भी पानीपत की लड़ाई ने मुगल साम्राज्य की स्थापना को पूरा नहीं किया था क्योंकि अभी उत्तरी भारत की राजनीति में दूसरे महत्वपूर्ण अर्थात राजपूतों के साथ संघर्ष अभी बाकी था।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि पानीपत की विजय ने महान मुगल साम्राज्य की नींव रखी जो शान, शक्ति और सभ्यता में मुस्लिम जगत में सबसे महान था और रोम साम्राज्य से भी बराबरी का दावा कर सकता था।

दिनांक - 07-02-2024

अनिल कुमार, इतिहास विभाग, आर० बी० जी० आर० कॉलेज, महाराजगंज

TDC PART I, HISTORY (Hon), PAPER-I

प्राचीन भारतीय इतिहास के पुरातात्विक स्रोत

प्राचीन भारत का इतिहास मौलिक तत्वों एवं सिद्धांतों का इतिहास है भौतिक घटनाओं का नहीं। इतिहास का विषय मृत अतीत है और इसका सम्बन्ध उन घटनाओं से है जो घट चूकी है। इस अतीत के अध्ययन के लिए जिस उपलब्ध सामग्री का आश्रय लेना पड़ता है उसे प्राचीन इतिहास का स्रोत कहा जाता है। प्राचीन भारतीय इतिहास के आधारभूत सिद्धांतों के अध्ययन के लिए विविध स्रोत हैं जिनमें पुरातात्वि स्रोत भी एक है।

प्राचीन भारत के अध्ययन के लिए पुरातात्विक सामग्री का विशेष महत्व है। उसके तीन प्रमुख कारण है। पहला यह है कि भारतीय ग्रंथों का रचना-काल ठीक से ज्ञात नहीं है, इसलिए उनसे किसी काल विशेष की समाजिक एवं आर्थिक स्थिति का ज्ञान नहीं होता। दूसरे, साहित्यिक साधनों में लेखक का दृष्टिकोण भी बहुधा सही चित्र प्रस्तुत करने में बाधक हो जाता है। उदाहरण के लिए चीनी यात्रियों ने भारतीय समाज का वर्णन केवल बौद्ध दृष्टिकोण से ही किया, इसलिए उनके वर्णन पूर्ण रूप से ठीक नहीं है। तीसरे, ग्रंथों की प्रतिलिपि करने वालों ने अपनी इच्छानुसार अनेक प्राचीन प्रकरणों को छोड़ दिया और नये प्रकरण जोड़ दिए। पुरातात्विक सामग्री में इस प्रकार की हेर फेर करने की बहुत कम संभावना थी, इसलिए पुरातात्विक स्रोत अधिक विश्वसनीय है।

<u>अभिलेख</u> — पुरातात्विक स्रोतों के अन्तर्गत सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्रोत अभिलेख है। प्राचीन भारत के अधिकतर अभिलेख पत्थर या धातु की चादरों पर खुदे मिले हैं। सबसे प्राचीन अभिलेख अशोक के हैं जिससे उसके धर्म एवं राजत्व के आदर्श पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। अशोक के अधिकतर अभिलेख ब्राह्मी लिपि, खरोष्ठी लिपि एवं अरामाइक लिपि में पाये गये हैं। समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति अभिलेख से उसके विजयों और नीतियों का पूरा विवेचन मिलता है। ग्वालियर प्रशस्ति से राजा भोज की उपलब्धियों का पता चलता है।

इस प्रकार के अभिलेखों के अन्य उदाहरण कलिंग राज खारवेल का हाथीगुंफा अभिलेख, गौतमी बलश्री का नासिक अभिलेख, रुद्रदामा का गिरनार शिलालेख, स्कंदगुप्त का भितरी स्तंभ लेख और जूनागढ़ शिलालेख आदि हैं।

जो अभिलेख चट्टानों या स्तंभों पर खुदे हैं उनके प्राप्ति-स्थानों से उस शासक के राज्य की सीमाओं का भी अनुमान लगाया जाता है। जो भूखंड दान में दिये जाते थे उसके लिए भूमि-अनुदान-पत्र तांबे के चादरों पर उत्कीर्ण किये जाते थे। इन अनुदान पत्रों से अनेक शासकों के उपलब्धियों का पता भी चलता था। निजी अभिलेख बहुधा मंदिरों में या मूर्तियों पर उत्कीर्ण मिलते हैं। इन पर जो तिथियां खुदी मिलती हैं उनसे इन मंदिरों के निर्माण या मूर्ति-प्रतिष्ठापन का समय ज्ञात होता है। ऐसे अभिलेखों से तत्कालीन धार्मिक दशा एवं भाषाओं के विकास पर भी प्रकाश पड़ता है।

कुछ अभिलेखों से उन तथ्यों की पुष्टि होती है जिनका उल्लेख हमें साहित्य में मिलता है जैसे हमें पतंजली के महाभाष्य से ज्ञात होता है कि पुष्यमित्र शुंग ने अश्वमेध यज्ञ किये थे। उसी के वंशज धनदेव के अयोध्या अभिलेख से इस तथ्य की पुष्टि होती है। सातवाहन राजाओं का तो पूरा इतिहास ही उनके अभिलेखों के आधार पर लिखा गया है।

विदेशों से प्राप्त कुछ अभिलेखों से भी भारतीय इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है। एशिया माइनर में बोगजकोई नामक स्थान पर लगभग ईसा पूर्व 1400 का संधिपत्र अभिलेख मिला है। इनमें मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्य आदि वैदिक देवता देवताओं के नाम प्राप्त होते हैं इससे ज्ञात होता है कि वैदिक आर्यों के वंशज एशिया माइनर में भी रहते थे।

सिक्के - पुरातात्विक सामग्री में सिक्कों का स्थान भी कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है। भारत के प्राचीनतम सिक्कों पर अनेक प्रकार के चिन्ह उत्कीर्ण मिलते हैं।

उत्कीर्ण मिलते हैं। जिनका ठीक-ठीक अर्थ ज्ञात नहीं है जिन्हें 'आहत सिक्के' कहे जाते हैं। लेकिन जब कैं बैक्ट्रिया के हिंद यूनानी शासकों ने उत्तर पश्चिम भारत पर अधिकार किये तो उनके द्वारा लेख युक्त सिक्के चलाये गये। जिन्हें देख भारतीय शासक भी सिक्का-लेख वाले सिक्के चलाने लगे। इन सिक्कों से प्राचीन भारतीय इतिहासकोलिखने में काफी मदद मिली। पांचाल के मित्र शासकों और मालव तथा यौधेय आदि गणराज्यों का पूरा इतिहास उनके सिक्कों के आधार पर ही लिखा गया है। गुप्त सम्राटों का इतिहास भी अधिकतर उनके अभिलेखों के आधार पर लिखा गया है किन्तु उनके सिक्कों से भी उनकी उपलब्धियों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है।

*सिक्के यदि बड़ी संख्या में एक स्थान पर मिलते हैं तो यह अनुमान लगाया जाता है कि सिक्कों का प्राप्ति स्थान उस शासक के राज्य का भाग था। यदि सिक्कों पर कोई तिथि उत्कीर्ण हो तो उसका राज्यकाल पता चल जाता है। सिक्कों के पृष्ठ भाग पर जिस देवता की आकृति बनी हो उससे शासक के धार्मिक विचार जाने जाते हैं। सिक्कों में जब सोने की अपेक्षा खोट की मात्रा अधिक होती है तो यह अनुमान लगाया जाता है कि उस समय उस राज्य की आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी। समुद्रगुप्त के सिक्का पर यूप बना है और 'अश्वमेध पराक्रमः' शब्द खुदे हैं। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि उसने अश्व मेध यज्ञ किया था। इन सिक्कों से तत्कालीन जनता की साहित्य और कला में रुचि की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है अर्थात मुद्राओं से सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा समाजिक महत्व की अनेक सूचनाएँ मिलती हैं।

स्मारक एवं भवन — प्राचीन काल के महलों और मंदिरों की शैली से वास्तुकला के विकास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। उत्तर भारत के मंदिरों में के कला की शैली को 'नागर शैली' एवं दक्षिण भारत के मंदिरों की कला 'द्रविड़ शैली' कहलाती है। दक्षिणापथ के मंदिरो के निर्माण शैली

को 'वेसर शैली' कहा गया है। मंदिरों, स्तूपों और विहारों से तत्कालीन धार्मिक विश्वासों का पता चलता है। जावा का स्मारक 'बोरो बुदुर' इस बात का प्रमाण है कि महायान बौद्ध धर्म वहाँ प्राचीन काल में काफी लोकप्रिय था। इस प्रकार कला के माध्यम से हम भारत और विदेशों के सांस्कृतिक संबंधों का अध्ययन करते हैं।

मूर्तियाँ – इसी प्रकार प्राचीन काल में कुषाणों, गुप्त शासकों और गुप्तोत्तर काल में जो मूर्तियाँ बनाई गई उनसे जनसाधारण की धार्मिक आस्थाओं और मूर्तिकला के विकास पर बहुत प्रकाश पड़ा है। भारहुत, बोधगया, साँची और अमरावती की मूर्तिकला में जनसाधारण के जीवन की अति सजीव झाँकी प्राप्त होती है।

चित्रकला – इसी प्रकार अजंता के चित्रों से गुप्त काल की कलात्मक उन्नति का पूर्ण आभास मिलता है। उस समय जीवन और कला का अन्योन्याश्रय संबंध क्या था पता चलता है। उक्त चित्रकला से तत्कालीन जीवन की झलक देखने को मिलती है।

अवशेष – बस्तियों के स्थलों के उत्खनन से जो अवशेष मिले हैं उनसे प्रागैतिहासिक और आद्य इतिहास पर बहुत प्रकाश पड़ा है। यहाँ तक पता चला है कि भारत में आदि मानव ईसा से 4 लाख से 2 लाख वर्ष पूर्व रहा करता था। पुरापाषाण युग, नवपाषाण युग, हड़प्पा संस्कृति के बारे में पता चला। अवशेषों में जो मुहरें मिली हैं उनसे प्राचीन भारतीय इतिहास के लेखन में काफी सहायता मिली। लोहे के प्राप्त अवशेषों से प्राचीन भारत के आर्थिक और समाजिक विकास की प्रक्रिया को समझने में मदद मिलती है।

इस प्रकार निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि पुरातात्विक साक्ष्य की सहायता से हम प्राचीन भारत के इतिहास को पहले की अपेक्षा अधिक तर्कसंगत ढंग से समझ सकते हैं तथा पुरातात्विक स्रोत के उचित प्रयोग के आधार पर ही निरपेक्ष इतिहास की रचना की जा सकती है।

— The end